खाकी 'ब्लड मनी' नहीं, नागरिक पर भरोसा हो

विकास नारायण राय

गत दिनों गोरखपुर में हुयी मनीष गुप्ता की पुलिस द्वारा नृशंस हत्या की तरह ही आज लखीमपुर खेरी में भी किसानों के बर्बर हत्याकांड को संभव करने वाली यूपी पुलिस का 'ठोक दे' ब्रांड मुंह छिपाता फिर रहा है । यह रोज नहीं होता कि सुप्रीम कोर्ट को एक खूनी मामले में पुलिस जांच की गंभीर खामियों का स्वत: संज्ञान लेना पड़ रहा हो जबकि राज्य सरकार 'ब्लड मनी' के दम पर कातिलों को बचाने में जुटी नजर आ रही हो । दरअसल, पुलिस हिंसा और ब्लड बाथ के दुष्चक्र में फंसे योगी शासन के लिए दोहरा सबक यह होगा कि अपराधी का सफाया अपराध का सफाया नहीं होता और अलोकतांत्रिक पुलिस नीतियों की फसल पक जाए तो बोने वालों को ही काटनी भी पड़ेगी ।

दरांग, असम का एसपी तो मुख्यमंत्री का भाई था, एक स्थानीय राजनीति में पला-बड़ा अधिकारी। अतिक्रमण हटाने के क्रम में मोईनुल हक़ की नृशंस पुलिस हत्या में पुलिस के आपराधिक रवैय्ये पर खामोश रहा! लेकिन गोरखपुर का एसपी एक नौजवान आइपीएस अधिकारी था जिसे कानून व्यवस्था की सर्वश्रेष्ठ ट्रेनिंग मिली होगी। वह न सिर्फ मनीष गुप्ता की पुलिस हत्या को उचित ठहरा रहा था बल्कि अपने डीएम के साथ मृतक की पत्नी पर एफआईआर न दर्ज कराने का प्रशासनिक दबाव भी डाल रहा था। दरअसल, दोनों एसपी के व्यवहार और शब्दों में क्रमश: उनके मुख्यमंत्री ही तो थे जो पुलिस एनकाउंटर की गुंडा संस्कृति को खुलेआम बढ़ावा देते आ रहे हैं। योगी आदित्यनाथ और हिमांता बिस्वा सर्मा के प्रोत्साहन में

उनकी पुलिस आपराधिक गिरोह वाला बर्ताव कर रही है।

अप्रैल में भारत के मुख्य न्यायाधीश (सीजेआई) का कार्यभार संभालने पर जस्टिस एनवी रमना ने इस गंभीर न्यायिक विसंगति को रेखांकित करने में देर नहीं की । 30 जून को दिए पीडी देसाई स्मृति व्याख्यान में उन्होंने दो-टूक चेताया था कि हमने 'कानून का शासन' हासिल करने के लिए संघर्ष किया था जबकि 'कानून द्वारा शासन' एक औपनिवेशिक प्रवृत्ति है । यह समझना मुश्किल नहीं है कि ऐसा क्यों कर हो पा रहा है ?

अंग्रेज शासकों ने भारत में 'राजा का शासन' के स्थान पर 'कानून का शासन' की अवधारणा लागू करने की पहल की थी । लेकिन, इसे उन्होंने नौकरशाही के माध्यम से औपनिवेशिक कानूनों द्वारा अपना निरंकुश शासन तंत्र चलाने की पद्धति के रूप में चलाया, जिसमें पुलिस अनिवार्यत: शासक की एजेंट होती थी । आजाद भारत में लोकतान्त्रिक संविधान अपनाया गया लेकिन बिना तदनुसार फौजदारी कानूनों और प्रक्रियाओं के अलोकतांत्रिक रुझान को पूरी तरह बदले। लिहाजा, जमीनी स्तर पर पुलिस शासक की कमोबेश उसी तरह एजेंट बनी रही जैसी अंग्रेजों के जमाने में हुआ करती थी। इसने देश में प्राय: एक ऐसे विरोधाभासी कानूनी निजाम को बढ़ावा दिया है, जहाँ संवैधानिक अदालतें अपनी व्याख्या 'कानून का शासन' के तहत करती हैं जबकि पुलिस आये दिन नागरिकों को कानूनी हथकंडों द्वारा प्रताड़ित कर सकती है ।

इस वर्ष अपनी स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव मनाते भारत की न्यायिक वस्तुस्थिति का सार यही है कि औपनिवेशिक कानून-व्यवस्था को लोकतान्त्रिक कानून-व्यवस्था से बदला जाना संभव नहीं हो सका है । सीजेआई रमना की अगुवाई वाली सुप्रीम कोर्ट बेंच ने गत शुक्रवार कहा कि देश भर के नौकरशाह खासकर पुलिस अधिकारियों का जो व्यवहार है उस पर उनकी गहरी आपत्ति है। सीजेआई ने इशारा किया कि वह ऐसे पुलिस अधिकारियों और नौकरशाहों के खिलाफ प्रताड़ना की शिकायत के परीक्षण के लिए स्टैंडिंग कमिटी बनाने की सोच रहे थे। स्टैंडिंग कमिटी के सुझाव का दो आधार पर स्वागत किया जाना चाहिए । सुप्रीम कोर्ट के 2006 के पुलिस सुधार निर्णय में जिस राज्यवार पुलिस कम्प्लेंट्स कमिटी का प्रावधान किया गया था वह हर जगह छलावा सिद्ध हुयी क्योंकि वह उसी नौकरशाही और सत्ता प्रतिष्ठान का हिस्सा थी जिसके विरुद्ध शिकायतें होती हैं । इसलिए, आज की स्थिति में, एक स्वतंत्र न्यायिक कमिटी के बिना कुछ नहीं बदलने जा रहा । और, जिस पैमाने पर पुलिस की रोजमर्रा की कार्यप्रणाली में हिंसा को नॉर्मल बना दिया गया है, वह एक सक्रिय दखल की मांग करता है, न कि नौकरशाही की तरह फाइल सरकाते जाने में या संवैधानिक अदालतों की तरह हाई प्रोफाइल मामलों में उलझ कर रह जाने में । यानी, पुलिस हिंसा पर नियंत्रण के लिए बनाई गयी स्टैंडिंग कमिटी की रूपरेखा ऐसी होनी चाहिये कि उसकी कार्यप्रणाली समयबद्ध हो और वह नियमित रूप से सक्रिय दखलंदाजी कर सके ।

उदाहरण के लिए, अमेरिका की तुलना में, भारत में ऐसे व्यापक सरकारी/गैरसरकारी डेटाबेस सिस्टम उपलब्ध नहीं हैं जो नागरिकों को पुलिस हिंसा के प्रति लगातार सजग रख सकें । अमेरिका में नेशनल वाइटल स्टेटिस्टिक्स सिस्टम (एनवीएसएस) के आंकड़ों की तुलना तीन प्रमुख गैरसरकारी संगठनों के डेटाबेस से करने पर राज्यवार पुलिस हिंसा में बड़े पैमाने पर नस्लीय और जातीय पूर्वाग्रहों का खुलासा हुआ । साथ ही, यह भी सामने आया कि सरकारी आंकड़ों में पुलिस हिंसा की काफी कमतर रिपोर्टिंग की गयी है । इसने भी वहां के गत वर्ष के 'ब्लैक लाइव्स मैटर' आन्दोलन को तर्क और दिशा दी । फलस्वरूप, आज वे पुलिस सुधारों के एक बेहद महत्वपूर्ण दौर से गुजर रहे हैं ।

लखीमपुर खेरी में मुख्य आरोपी की गिरफ्तारी से वहां 'कानून का शासन' की अवधारणा रास्ते पर आयी लगती है; लेकिन एक रीढ़-विहीन पुलिस के हाथ में 'कानून की भूमिका' को लेकर संदेह समाप्त नहीं हुए हैं । इससे छुटकारे की कुंजी नागरिक के सशक्तीकरण में निहित है ।

जाहिर है, सीजेआई के बेबाक समर्थन के बावजूद, अकेली स्टैंडिंग कमिटी के बस में नहीं होगा कि वह पुलिस हिंसा के 'नार्मल' हो जाने का तोड़ बन सके । इस कमिटी को नागरिकों को सशक्त करना होगा और इसके लिए रोजमर्रा की छोटी-बड़ी हर पुलिस हिंसा को रिकॉर्ड करना होगा । पुलिस हिंसा का एक निरंतर, व्यापक और पारदर्शी डेटाबेस, जो हर नागरिक की पहुँच में हो, सही दिशा में अनिवार्य कदम की तरह होगा।

(पूर्व डायरेक्टर, नेशनल पुलिस अकादमी, हैदराबाद)

जज साहब! यह हमारी फितरत नहीं

स्वराजबीर

सर्वोच्च न्यायालय के अति-सम्माननीय जज साहब! आपने केंद्र सरकार द्वारा बनाये कृषि-कानूनों के विरुद्ध दिल्ली में धरना देने की इजाजत मांगने आई किसान-महापंचायत (जो सिंघु-टीकरी-गाजीपुर में लगे किसान मोर्चों का हिस्सा नहीं है) की याचिका सुनते हुए तमाम किसानों को संबोधित करते हुए कहा, तुम लोगों ने (अर्थात आन्दोलनकारी किसानों ने) सारे शहर (दिल्ली) का गला घोंट दिया है, अब तुम लोग शहर के अंदर आना चाहते हो! मैं बहुत आदर और नम्रता के साथ अपनी और किसान भाई-बहनों की ओर से आपसे गुजारिश करना चाहता हूँ कि हमने ऐसा कोई काम नहीं किया।

जज साहब! हमारी रगों में ऐसा लहू नहीं बहता जो हमारे हाथों को ऐसी लर्जिश दे सके कि वो किसी इन्सान, शहर, नगर या बस्ती के गले तक पहुँच जाएँ। हम दो हाथों से श्रम करके अन्न उगाने वाले लोग हैं, मिट्टी के साथ मिट्टी होने वाले; हम सीता जोतते और बीज बीजते हैं, लहलहाती फसलें काटकर शहरों और गांवों के चरणों में रखते हैं ताकि इस धरती के लोग अन्न खाएं और जीते-बसते रहें। हम जमीन से जुड़े हुए हैं, जो आपने कहा है, वह हमारी फितरत नहीं, ऐसा करना न तो हमारी विरासत है और न ही हमारी रीत। हाँ, आपके शहर की रक्षा के लिए किसानों के बेटों ने सरहदों पर ल?ते हुए अपनी प्राणों की आहुति जरूर दी है; आप इस तथ्य को जानते हैं पर शायद उपरोक्त प्रश्न पूछते समय आप इस हकीकत को कुछ समय के लिए भूल गए।

जज साहब!! शहरों का गला कौन घोंटता है? जरा उस शहर को देखिए जहाँ देश का सर्वोच्च न्यायालय है; मुंबई, बैंगलोर, हैदराबाद किसी भी शहर को देखिये, इनमें से किसी भी शहर का गला किसानों ने नहीं घोंटा; यह गगनचुम्बी इमारतों और कंक्रीट के जंगल किसानों की संपत्ति नहीं हैं; यहाँ सारा दिन पूरी रफ्तार से दौड़ती कारें; हवा में धुआं और अन्य जहरीली गैसें उगलते वाहन किसानों के नहीं हैं। शहरों का गला किसानों ने नहीं, कंक्रीट के इन जंगलों और जहरीली गैसों ने घोंटा है। इन इमारतों में करोड़ों एयर-कंडीशनर लगे हुए हैं। यूनिवर्सिटी ऑफ विस्कोंसिन-मेडिसिन की खोज के अनुसार दुनिया की 116 बिलियन इमारतों में एयर-कंडीशनर लगे हुए हैं। खोज के अनुसार एयर-कंडीशनर हमारे देश की बिजली ऊर्जा का 10 प्रतिशत उपयोग करते हैं और 2050 तक इसका उपयोग सारे देश की बिजली ऊर्जा का 45 प्रतिशत हो जायेगा। बिजली ऊर्जा ज्यादातर कोयले से चलने वाले थर्मल प्लांटों से पैदा होती है जिसके कारण हवा बड़े स्तर पर प्रदूषित होती है। शहरों का गला इस प्रदूषण ने घोंट रखा है, लालची भवन-निर्माता और कॉर्पोरेट घराने घोंट रहे हैं, शहरों का गला वह जीवन शैली घोंट रही है, जिनमें से गांवों को खारिज किया जा रहा है।

जज साहब! आप बेहतर तरीके से जानते हैं कि विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) के हाकिम क्या चाहते हैं। वह चाहते हैं कि कृषि क्षेत्र में काम करते लोगों में से ज्यादा को कृषि क्षेत्र से बाहर निकाला जाए। किसान भूमिहीन और बेरोजगार हो जाएं कम वेतन पर काम करने वाले मजदूर बन जाएं। मजदूर हो जाना कोई उपहास-कटाक्ष नहीं है पर किसानों को अपनी जमीनों से बेदखल करना अन्याय है। यह कृषि कानून विश्व बैंक और आईएमएफ की सोच के अनुसार बनाए गए हैं और यह बात सरकार भी जानती है, माहिर भी और आप भी जज साहब! हम दिल्ली की दहलीज पर शहर का गला घोंटने नहीं न्याय करने की फरियाद लेकर आए हैं। आपने कहा (मैं दोहरा रहा हूँ) तुम लोगों ने शहर का गला घोंट दिया है और अब तुम लोग शहर के अंदर आना चाहते हो?जज साहब! मैं फिर बड़ी नम्रता से सवाल पूछना चाहता हूँ कि क्या हम शहर में नहीं आ सकते? क्या हम बेगाने या असभ्य हैं? क्या हम इस देश के नागरिक नहीं? क्या हमने इस देश के लिए खून-पसीना एक नहीं किया है? क्या हमारे बुजुर्गों ने इस देश की आजादी के लिए लड़ते हुए अपने प्राणों की आहुति नहीं दी है?

जज साहब! अब मैं कुछ शब्द अपने पंजाबी किसान बहन-भाइयों की ओर से कहना चाहता हूँ। हम पंजाबी बाबा नानक, शेख फरीद, बुल्ले शाह, बाबा सोहन सिंह भकना, करतार सिंह सराभा, मदन लाल ढींगरा, सैफुद्दीन किचलू, डॉक्टर सतपाल, भगत सिंह और सुखदेव के वारिस हैं। हमें गुरु अर्जन देव जी ने यह शिक्षा दी है, ੫ना को बैरी नहीं बेगाना सगल संग हमको बनि आई।।

जज साहब! मैं यहाँ एक सवाल पूछना चाहता हूँ कि आपके मन में यह 'तुमलोग' शब्द कहाँ से आया। आपके सवाल की सीरत में 'हम' (अर्थात शहरवासी) और 'तुमलोग'(अर्थात देहाती, किसान) का विभाजन प्रत्यक्ष दिखाई देता है। यह बात बहुत पीड़ादायक है कि आपने हमें बेगाना, पराया और अन्य समझा। हम तो समझते थे/हैं कि आप हमारे अपने हैं, हमें न्याय देने वाले; हमें उम्मीद थी कि यह 'हम-तुम' का भेदभाव कम से कम आपके मन में तो नहीं आएगा।

दिल्ली हमारी राजधानी है हमारे देश का दिल। इसकी दहलीज पर तो हम इस उम्मीद से आए हैं/थे कि हमारी राजधानी हमारी बात सुनेगी; और जज साहब! आपने देखा है कि हमें यहाँ बैठे 10 महीने हो गए हैं; पंजाब के साथ 700 से ज्यादा किसान यहां शहीद हुए हैं; पर सरकार बात नहीं सुन रही। जज साहब! आपने सरकार से क्यों नहीं कहा कि हमारी बात सुने। 22 जनवरी के बाद, आठ महीने होने को आए, सरकार ने किसानों के साथ कोई चर्चा नहीं की। सरकारी चुप के आठ महीने हमारे लिए आठ सदियों जैसे हैं; किसान बहन-भाई खुले आसमान के नीचे बैठे हैं। उन्होंने सर्दियों की हड्डियां चीरती रातें, गर्मियों के जिस्म झुलसा देने वाले दिन और बारिश-आंधी, सब झेले हैं; वह बीमार पड़े हैं; मौतें हो रही हैं। सरकारी खामोशी कितनी क्रूर और कठोर हो सकती है, वह हम जानते हैं। आपका एक हुकुम इस सरकारी खामोशी को तोड़ सकता था/है पर आपने सरकार को ऐसा कोई हुक्म नहीं दिया। सरकार को पूछा भी नहीं कि बातचीत क्यों नहीं कर रही। किसानों के साथ, जिनका आंदोलन शांतिपूर्ण संयम का मुजस्समा है, बातचीत का सिलसिला क्यों तोड़ा गया है? जज साहब! क्यों? यह भेदभाव क्यों? हमें तो शहर का गला घोंटने वाला घोषित किया जा रहा है और हमारा गला घोंटने वाली सरकार से कोई सवाल नहीं पूछा जा रहा?

जज साहब! आपने कहा/पूछा है, अब तुम लोग शहर के अंदर आना चाहते हो?

जज साहब! राजधानी के इतिहास में हजारों धरना-प्रदर्शन हुए हैं। मार्च 1919 में जब पंजाब में रौलट एक्ट के विरुद्ध आंदोलन प्रचंड हो रहा था तो दिल्ली भी पंजाब का हिस्सा थी। 30 मार्च 1919 को दिल्ली में हड़ताल हुई, फौज ने हड़ताल करने वालों पर गोली चलाई, 6 लोग मारे गए और 16 जख्मी हुए थे; यह 13 अप्रैल को जलियांवाला बाग में हुए खूनी नरसंहार की प्रस्तावना थी। यहीं भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने औपनिवेशिक सरकार के जनविरोधी कानूनों (पब्लिक सेफ्टी एक्ट और ट्रेड डिस्प्यूट एक्ट) के विरुद्ध रोष प्रगट करने के लिए 1929 में असेंबली में बम फेंका था, किसी को मारने के लिए नहीं, तत्कालीन बहरी सरकार के कानों तक लोगों की आवाज पहुंचाने के लिए।

और 346 बरस पहले (1675 ईस्वी में) यहाँ हमारे गुरु तेग बहादुर जी और उनके साथी सच की लड़ाई के लिए शहीद हुए थे और 305 साल पहले (1716 ईस्वी में) यहाँ ही बंदा सिंह बहादुर और उसके सैकड़ों साथियों ने शहादत को गले लगाया था और 238 साल पहले (1783 ईस्वी में) सरदार बघेल सिंह, जस्सा सिंह आहलूवालिया और जस्सा सिंह रामगढ़िया की अगुवाई में सिख सेनाओं ने यहाँ जीत के झंडे लहराए थे; तीस हजारी जहाँ स्थानीय अदालतें हैं, वह 30 हजार सैनिकों, जिन्होंने दिल्ली फतेह की थी, के नाम पर ही है।

और 1947 ने दिल्ली और पंजाब के बीच एक और रिश्ता कायम किया दु:ख-दर्द बांटने का। 1947 में पंजाब को नोचा-बाँटा गया, पंजाबियों ने अपने आप को गोदा, कत्लोगारत हुई, दस लाख पंजाबी मारे गए, लाखों उजड़े और बेघर हुए। पश्चिमी पंजाब में उजड़े पंजाबियों के काफिले दिल्ली आ गए पश्चिमी पंजाब से उजड़े पंजाबियों के काफिले दिल्ली आ गए। दिल्ली ने उन्हें पनाह दी। चार लाख से ज्यादा पंजाबियों ने अपनी किस्मत दिल्ली में तलाशनी/ढूंढनी शुरू की। उनमें से ज्यादा व्यापारी, दस्तकार और मेहनत-मशक्कत करने वाले लोग थे। उस अपार दुख से गुजरते हुए पंजाबियों ने जिंदगी के नक्श पुन: ग?, खुद पैरों पर खड़े हुए और दिल्ली को बनाया-सँवारा। जज साहब! इस दिल्ली को बनाने-सँवारने में पंजाबियों का भी बड़ा हिस्सा है।

अतीत को छोड़कर वर्तमान की ओर लौटें तो पिछले दशक में इस शहर में बड़े आंदोलन हुए निर्भया के साथ हुए- निर्भया बलात्कार के विरुद्ध आंदोलन, अन्ना हजारे की अगुवाई में भ्रष्टाचार के विरुद्ध आंदोलन, और कई अन्य। लाखों लोगों ने इन आंदोलनों में हिस्सा लिया; लोकतंत्र में ऐसे ही होता है और ऐसे ही होना चाहिए और इसीलिए मुख्य मुद्दा यह है कि हमारे दिल्ली आने के बारे में सवाल क्यों उठाए जा रहे हैं। प्रख्यात न्यायविद अर्ल वारेन (Earl Warren) का कथन है कि रूप/शब्द नहीं बल्कि कानून का अन्तर्भाव न्याय को जीवित रखता है। संविधान और कानून का अन्तर्भाव देश के करोड़ों किसानों और खेत मजदूरों के हक में खड़ा होने वाला है। किसी कानून को तकनीकी रूप से लागू करके हक-सच की लड़ाई को कुचलना संविधान और कानून के साथ बेइंसाफी है। किसान सुप्रीम कोर्ट से न्याय की आस रखते हैं।

(सम्पादक : पंजाबी ट्रिब्यून)